भारतीय संघवाद के लिए तेलंगाना के क्या मतलब हैं?
What Telangana Means for Indian Federalism

अरुण सागर
Arun Sagar
February 24, 2014

आखिरी क्षणों में हुई राजनीतिक धमाचौकड़ी को अगर छोड़ दिया जाए तो 2014 की शुरुआत में तेलंगाना भारत का 29 वाँ राज्य बन जाएगा. इससे उस कहानी का अंत हो गया जिसकी शुरुआत स्वतंत्र भारत में राज्यों के पुनर्गठन के पहले चरण के रूप में हुई थी. तेलंगाना उस आंध्र प्रदेश को विभाजित करके बनाया जाएगा, जिसका निर्माण सन् 1953 में तत्कालीन हैदराबाद और मद्रास राज्यों के तेलुगुभाषी क्षेत्रों को मिलाकर किया गया था. तेलंगाना उस क्षेत्र का नाम है जो पहले हैदराबाद राज्य का हिस्सा था. आंध्र प्रदेश के निर्माण के बाद ही भाषाई आधार पर अन्य राज्यों के निर्माण के लिए आंदोलनों की शुरुआत हुई थी. इसके कारण ही सन् 1956 में बड़े पैमाने पर राज्यों का पुनर्गठन किया गया.

आंध्र प्रदेश का वर्तमान उदय भी एक बार फिर से भारी उथल-पुथल के संकेत दे रहा है. पिछले कई वर्षों से तेलंगाना की माँग बढ़ने और अंततः इस माँग के पूरा होने के कारण देश के अनेक भागों में नये-नये राज्यों की मांगें फिर से ज़ोर पकड़ने लगी हैं. हालाँकि हर माँग के पीछे उसकी विशिष्ट ऐतिहासिक पृष्ठभूमि ही रही है. इन आंदोलनों में सबसे प्रमुख रहे हैं, बोडोलैंड, गोरखालैंड और विदर्भ के आंदोलन, लेकिन कुछ और क्षेत्रों में और भी ऐसी माँगें उठती रही हैं : कोशल, हरित प्रदेश, बुंदेलखंड,पूर्वांचल, विंध्य प्रदेश, कुकी, तुलुनाडु और ऐसी माँगों की और भी लंबी सूची है. हालाँकि इनमें से कुछ आंदोलन सुर्खियों में भी रहे, फिर भी उनका केंद्र और राज्यों के संबंधों पर असर ने कोई विशेष ध्यान आकृष्ट नहीं किया.

पहली नज़र में और खास तौर पर तेलंगाना आंदोलन की सफलता के कारण और कुछ अन्य माँगों के सफल होने की संभावना के कारण ऐसी अनेक माँगों को देखते हुए लगता है कि भारतीय राजनीति का और भी ''संघीकरण'' या ''विकेंद्रीकरण'' हो सकता है. भारत के ''केंद्रीकरण'' का अंतर्निहित मंतव्य तो यही लगता है. क्षेत्रीय राजनीति के आरंभिक सशक्तीकरण (अनेक दशकों तक एक ही दल का वर्चस्व रहने के कारण) राजनैतिक विखंडीकरण का अगला ''स्तर'' तो सहज प्रतिक्रिया के रूप में यही है कि भारतीय संघ कमज़ोर होने के बजाय सर्वाधिकारवादी राज्य के रूप में अधिक मज़बूत हो रहा है. इसके अनेक कारण हैं.

सबसे पहला कारण तो यही है कि किसी भी देश के खंडित होने की संभावना मात्र से ही उसकी राजनैतिक अस्मिता पर खतरा मंडराने लगता है, क्योंकि यह अस्मिता इसकी सीमाओं से जुड़ी होती है. केंद्र सरकार द्वारा राज्य की सीमाओं का एकपक्षीय पुनर्निर्धारण और नये राज्यों के निर्माण की पद्धति संघीय ढाँचे वाले अधिकांश देशों में नहीं अपनायी जाती. ऐसे संघीय ढाँचे का एक स्पष्ट उदाहरण है नाइजीरिया, जहाँ संघीय प्राधिकरण द्वारा नये उप-राष्ट्रीय इकाइयों के रूप में एक के बाद एक राज्यों (तीन राज्यों से छत्तीस राज्यों) का गठन किया जाता रहा है, लेकिन इनमें से अधिकांश राज्यों का पुनर्गठन गैर-संवैधानिक सैनिक तानाशाही के अंतर्गत ही किया गया. भारत में संविधान के अनुच्छेद 3 के अंतर्गत संसद को यह अधिकार दिया गया है कि वह एक साधारण-से कानून से ही राज्यों की सीमाओं में बदलाव कर सकती है या फिर नये राज्यों का निर्माण कर सकती है. एक परंपरा यह भी है जिसके अंतर्गत राष्ट्रपति किसी प्रस्तावित कानून पर राज्य की विधान सभा की राय माँगते हैं, लेकिन विधान सभा की राय बाध्यकारी नहीं होती. इस बार जहाँ एक ओर आंध्र प्रदेश की विधान सभा में तेलंगाना राज्य के निर्माण संबंधी विधेयक के प्रारूप

पर बेहद गर्मागर्म बहस चल रही थी, वहीं केंद्र सरकार के प्रवक्ताओं ने घोषित कर दिया कि विधान सभा की प्रतिक्रिया के बावजूद संसद में तेलंगाना राज्य का निर्माण संबंधी विधेयक रखा जाएगा.

इसका दूसरा और अपेक्षाकृत कम स्पष्ट कारण है शुद्ध भाषाई मानदंड के विपरीत नये राज्य के निर्माण के इस आंदोलन का आम तौर पर आर्थिक, सांस्कृतिक और जातीय मानदंड. इससे राज्य की समग्र रूप में घटती राजनैतिक शक्ति का पता चलता है. यह स्थिति हर विशेष मामले में क्षेत्रीय अखंडता पर मात्र संकट आने पर ही नहीं होती, बल्कि अंतर्राज्यीय शक्ति स्थलों के सीधे बढ़ते प्रभाव के मद्देनज़र भी होती है. केंद्र और राज्यों के बीच राजनैतिक समरूपता के कारण केंद्रीकरण को ऊपर से नीचे (टॉप-डाउन) का केंद्रीकरण कहा जा सकता है; सरकार के दोनों ही स्तरों पर एक ही राजनैतिक दल की उपस्थिति इसका आदर्श उदाहरण हो सकती है, लेकिन मिली-जुली राजनीति के इस युग में केंद्रीकरण को अलग ढंग से देखा जा रहा है, जहाँ संभावना इस बात की है कि राष्ट्रीय स्तर के राजनीतिज्ञ, राज्य स्तर के राजनीतिज्ञों की ''अनदेखी'' करते हुए स्थानीय माँगों पर अधिक ध्यान देने लगें. राज्य स्तर के कार्यकर्ताओं के प्रभाव के कारण राज्य स्तर के कुलीन लोगों के विरुद्ध स्थानीय राजनीति और क्षेत्रीय स्तर के कुलीन लोगों को भड़का कर नये राज्यों की माँग पूरी न होने पर भी इन माँगों को खत्म कर दिया गया. इसे राजनैतिक दबाव के ही एक ''बॉटम-अप'' रूप में देखा जा सकता है. यहाँ तक कि वे राजनैतिक समूह भी जो पहले आम तौर पर राज्य के हित में कार्य करते थे, अब क्षेत्रीय समूहों को बढ़ावा देने लगे हैं. भाषाई अस्मिता के कारण उस तरह के सशक्त राजनैतिक आंदोलनों का खतरा उतना नहीं रह गया है, जितना जातीय / ऐतिहासिक अस्मिता और आर्थिक पिछड़ेपन और / या भेदभाव के साझे बोध के कारण होताहै. राजनीतिज्ञ हमेशा ही अपने चुनाव क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करने के लिए बाध्य रहते हैं, लेकिन राज्य-स्तर की राजनीति पर इसका व्यापक प्रभाव तभी दिखायी देता है जब उनके चुनाव क्षेत्र अपने पक्ष में राज्य स्तर पर उनसे किसी कार्रवाई की अपेक्षा नहीं करते बल्कि अपने राज्य के ही विभाजन की माँग करते हैं.

यह देखना भी महत्वपूर्ण है कि नये राज्यों की माँग भारतीय संघ से अलग होने से संबद्ध नहीं है. देश के कई इलाकों में देश से अलग होने या बगावत के आंदोलन आज भी हो रहे हैं और पहले भी होते रहे हैं. इन आंदोलनों से संघ की क्षेत्रीय अखंडता को खतरा होने लगता है. इस बात में भी कोई अचरज नहीं होना चाहिए कि इनके विरुद्ध केंद्र की कड़ी प्रतिक्रिया रही है. दूसरी ओर, नये राज्य के लिए चलाये जाने वाले आंदोलनों से राज्य स्तर के संघ को ही खतरा रहता है. नये राज्यों की माँगों के प्रभाव और राजनैतिक लाभ के अलावा इन माँगों से एक ऐसी प्रक्रिया भी शुरू हो सकती है जिसके कारण राज्य सरकार की शक्तियों का वितरण अन्य प्रशासनिक इकाइयों में नीचे की ओर हो सकता है. इसका ज्वलंत उदाहरण है गोरखालैंड क्षेत्र में अर्ध-स्वायत्त प्रशासनिक इकाई का निर्माण.

अंततः केंद्र और राज्यों के संदर्भ में संघवाद के द्वैत स्वरूप का मतलब है कि कमज़ोर राज्य मज़बूत केंद्र का निर्माण करते हैं. अगर नये राज्यों के निर्माण का माँगें पूरी हो जाती हैं तो उन राज्यों के लघुतर आकार का सीधा प्रभाव केंद्र-राज्य स्तर के राजनैतिक समीकरण पर पड़ता है. उदाहरण के लिए संसद में प्रतिनिधित्व के संदर्भ में राज्यसभा और लोकसभा दोनों ही सदनों का गठन राज्यों की सीटों और उनकी आबादी के अनुपात में उनके चुनाव क्षेत्रों से जुड़ा होता है. छोटे राज्यों को कम सीटें मिलती हैं और इसके कारण राज्य स्तर के राजनीतिज्ञों का प्रभाव भी कम हो जाता है. दूसरी ओर, सीधे संसदीय प्रतिनिधित्व के कारण नये चुनाव क्षेत्रों की संभावना अपने-आपमें एक प्रकार का प्रोत्साहन ही है. यही वजह है कि स्थानीय नेता नये राज्य के निर्माण की माँग करते ही रहते हैं.

इन सभी बातों को मिलाकर इन गतिविधियों से एक ऐसी केंद्रीय शक्ति का निर्माण होता है जो देश-भर में कई जगहों पर अनेक प्रकार की स्थानीय और असंबद्ध प्रक्रियाओं से शक्ति ग्रहण करती है और इसका स्वरूप ऊपर से नीचे की ओर अर्थात् टॉप-डाउन नहीं होता. अलग राज्य की हर माँग के वास्तविक रूप में पूरा होने से यह ज़रूरी नहीं है कि इससे ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जिसके कारण राज्य स्तर की राजनीति में सूक्ष्म स्तर पर गिरावट ही आए. नये राज्यों के निर्माण की संभावना और क्षेत्रीय माँगों की शक्ति अपने-आप में ही संघीय प्रणाली में नीचे से ऊपर की ओर अर्थात् बॉटम-अप केंद्रीकरण का मार्ग प्रशस्त कर सकती है. तेलंगाना आंदोलन की संभावित सफलता ने इन तमाम स्थानीय शक्तियों को फिर से मज़बूत कर दिया है और इस प्रक्रिया के नये चरण के रूप में इसे देखा जाना चाहिए.

अरुण सागर सैंटर फ़ॉर मल्टीलेवल फ़ैडरैलिज़्म, नयी दिल्ली में ऐसोसिएट फ़ैलो हैं.

हिंदी अनुवादः विजय कुमार मल्होत्रा, पूर्व निदेशक (राजभाषा), रेल मंत्रालय, भारत सरकार <malhotravk@hotmail.com>